प्रवचन–9, गाथा–38

('समयसार' 38 वीं गाथा) **अब इस प्रकार दर्शन–ज्ञान–चारित्रस्वरूप परिणत हुए...** 38 (गाथा) में क्या कहते हैं? श्रोता ने जब गुरु के पास सुना, तब उसे दर्शन–ज्ञान और चारित्र (प्रगट) हुआ, यह क्या हुआ? इसका स्वरूप इसने कैसे प्राप्त किया? इसकी बात इसमें हैं। दर्शन–ज्ञानस्वरूप परिणत हुए, आहा...हा...! (अर्थात्) आत्मा (का) सम्यग्दर्शन (और) त्रिकाली चैतन्य का (ज्ञानस्वरूप) परिणमन दर्शन–ज्ञान और चारित्र – तीन रूप परिणत हुए – ऐसे **आत्मा को स्वरूप का संचेतन...** (अर्थात्) स्वरूप का अनुभव कैसा होता है? 'संचेतन' अर्थात् अनुभव। **यह कहते हुए आचार्य इस कथन को समेटते हैं...** 38 गाथा में जीव का अधिकार पूरा करते हैं। 39 वीं से अजीव का अधिकार चलेगा। यह जीव (अधिकार) की अन्तिम गाथा है।

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि॥38॥

नीचे हरिगीत।

मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!॥38॥

38 वीं गाथा, जीव (अधिकार) की अन्तिम (गाथा) है। जीव समझता है, तब उसका क्या परिणमन होता है? वह किससे समझता है? और पहले कैसा था? (वह कहते हैं)। पहले अप्रतिबुद्ध था। यद्यपि अप्रतिबुद्ध 23 गाथा (में) पहले आ गया है – अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। इस प्रकार यहाँ भी शुरुआत से (बात) ली है।

जो अनादि मोहरूप... पाठ में तो 'मोहरूप' है, फिर इसका अर्थ 'अज्ञान से' किया है। संस्कृत टीका में 'मोह' है। 'अनादि मोह' अपने स्वरूप को भूलकर राग और द्वेष आदि परचीज (है), उनको जो अपनी मानता (था), वह **अनादि मोहरूप अज्ञान से उन्मत्तता के कारण...** पागल–पागल था (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...! अपनी चीज

(है, उसको) भूलकर और जो (इसकी) वस्तु में नहीं ऐसे राग और द्वेष और राग–द्वेष के फल यह संयोग, इनको अपना मानता (हुआ), वह उन्मत्त अर्थात् पागल है। आहा...हा...! है? **उन्मत्तता के कारण...** आ...हा...हा...! (अर्थात्) स्वरूप की जिसको खबर नहीं, चैतन्य की जाति क्या है? और इसमें क्या सम्पदा भरी है? – इसकी जिसे खबर नहीं, ऐसा जो अनादि मोह के कारण उन्मत्त, अर्थात् पागल बना हुआ है, पागल बना हुआ है, आ...हा...हा...!

कोई ऐसा कहता है कि यह 'समयसार' तो मुनि को समझाने के लिए है, यहाँ तो, यहाँ तक आया है। अज्ञानी अनादि का मोह से मूढ़ था। **उन्मत्तता के कारण अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था...** अत्यन्त अप्रतिबुद्ध (कहा है) अर्थात् बिल्कुल–कुछ खबर नहीं; आत्मा क्या? राग क्या? पर क्या? वह अनादि से पर के साथ मिश्रपने से अज्ञानपने–पागलपन से भटकता था, ऐसे प्रतिबुद्ध को (समझाते हैं)। ऐसे अप्रतिबुद्ध को! है? अकेला अप्रतिबुद्ध (ऐसा) नहीं। **अत्यन्त अप्रतिबुद्ध** (कहा है)। इसको यह समझाते हैं। कोई ऐसा कहता था कि यह 'समयसार' तो मुनि के लिए ही है। तो यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि अत्यन्त अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। आहा...हा...! अनादि अज्ञानी – जिसे आत्मा क्या चीज है? और मैं क्या मानता हूँ? इसकी जिसे कोई खबर नहीं, ऐसा **अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था...** अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था, उसको यह समझाया है। आहा...हा...!

और विरक्त गुरु से... अर्थात् क्या कहते हैं? जो मिथ्यात्व और राग–द्वेष से विरक्त हुए हैं, उन गुरु से समझाया गया है परन्तु अज्ञानी से नहीं। उसी प्रकार धारणा-ज्ञान हो, उससे भी नहीं। आहा...हा...हा...! जानपना धारण किया हो, उनसे भी ये समझा नहीं। विरक्त गुरु! (अर्थात्) जो राग में रक्त था, (उससे) छूटकर–राग से जिसको विरक्तता प्रगट हुई है। आहा...हा...! चैतन्यमूर्ति राग से भिन्न (है, ऐसा) जिसे (आत्मज्ञान) प्रगट हुआ है – ऐसे विरक्त गुरु से (समझाने में आया)। बहुत गम्भीर भाषा है। समझाने में विरक्त गुरु निमित्त होता है – ऐसा सिद्ध करना है। अज्ञानी निमित्त होता नहीं; अज्ञानी की देशना निमित्तरूप भी नहीं होती। आहा...हा...हा...! विरक्त गुरु – एक बात! दो बातें हुई। एक अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था और इसे समझानेवाले विरक्त गुरु हैं, दो बातें हुई। आहा...हा...! उनके पास

से यह समझा।

अब, तीसरा बोल,... **निरन्तर समझाये जाने पर...** विरक्त गुरु कोई निवृत्त–फालतू नहीं कि निरन्तर इसे समझाये। पाठ तो ऐसा है। **निरन्तर समझाये जाने पर** – इसका अर्थ यह कि गुरु ने एक बार इससे कहा, दो बार, पाँच बार, दस बार कहा, बारम्बार कहा, (उसके बाद) इसने बारम्बार चिन्तन किया, गुरु की कही हुई बात को निरन्तर चिन्तवन में रहा – इसको गुरु निरन्तर समझाते हैं – ऐसा कहने में आया।

मुमुक्षु : शिष्य के ऊपर जवाबदारी आ गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाबदारी वहाँ ही है। इतनी बात (वास्तविक) गुरु बारम्बार कहते थे, एक बार नहीं परन्तु बहुत बार कहते थे, लेकिन निरन्तर नहीं, इतना अन्तर है। गुरु बारम्बार, इसको सत् की बात कहते थे। 'बापू! नाथ! (तू) चैतन्यमूर्ति आनन्दकन्द (है)। तेरे में आनन्द भरा हुआ है – ऐसा तू आत्मा है' – ऐसा गुरु ने एक बार नहीं, किन्तु बहुत बार कहा, वह तो अन्दर आता है, परन्तु यहाँ **निरन्तर समझाये जाने पर** – यह शब्द है। इसका अर्थ (यह) कि समझनेवाले, विचारनेवाले (को) निरन्तर उसकी खटक रहा करती है। गुरु ने जो कहा कि 'भगवान! तेरा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। राग, विकल्प, शरीर, वाणी से बिल्कुल अलग है – ऐसा गुरु ने दो–चार बार या बारम्बार कहा परन्तु यह समझनेवाला, निरन्तर समझाये जाने पर अर्थात् निरन्तर समझ में आने पर, स्वयं (स्वयं को) निरन्तर उसकी खटक रहा करती है। सुननेवाला ने सुनकर यह इस कान से सुना और निकाल दिया, एक बार सुनकर रखा – ऐसा नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? अन्तिम गाथा है – सार है। 38वीं (गाथा) जीव अधिकार की अन्तिम गाथा (है)।

इसको निरन्तर समझाये जाने पर, आहा...हा...! विरक्त गुरु निरन्तर, फालतू तो नहीं होते। मुनि को छट्ठा–सातवाँ गुणस्थान होता है; (अतः) वह तो क्षण में सातवें और क्षण में छट्ठे में आते हैं। वाणी तो निरन्तर होती नहीं, तथापि समझनेवाले (को) गुरु की कही हुई बात अन्दर में बारबार खटकती रहती है। रात और दिन आत्मा ज्ञायक... आत्मा ज्ञायक... आत्मा ज्ञायक... (इसी खटक में रहता हुआ)। वह ज्ञान का रसकन्द है, ऐसा अप्रतिबुद्ध को भी गुरु द्वारा समझाने पर, (उसको) भी बारम्बार समझने में यह खटक

रहती है। अन्दर आत्मा की समझ की खटक बारम्बार रहती है। एक घण्टा सुनकर निकाल दिया, बाद में दुकान पर 23 घण्टे धन्धे में फँस गया, ऐसा नहीं – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! इसको निरन्तर खटक रहा करती है। धन्धा-व्यापार....

मुमुक्षु : गुरुदेव! मेरी माँ! मेरी माँ! ऐसी खटक?

समाधान : हाँ...यह...यह...! आहा...हा...! मैं कौन हूँ? ऐसा जो गुरु के द्वारा कहा, वह बारम्बार इसे खटक में रहता है। देखो! यह समझने की रीति है। आत्मा को प्राप्त करने की यह विधि। अप्रतिबुद्ध होने पर भी, विरक्त गुरु ने इसको उपदेश दिया, (वह) उसे बारम्बार खटक में रहा करता है। आहा...हा...हा...! (एक) घण्टा सुनकर भूल गया और बाद में 23 घण्टे संसार के कार्य में एकाकार हो गया – ऐसे जीव को समझने की लायकात नहीं – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...हा...! थोड़े शब्दों में बहुत भरा है।

निरन्तर समझाये जाने पर जो किसी प्रकार से... आ...हा...हा...! अर्थात् **(महाभाग्य से)...** अर्थात् इसकी महा योग्यता से, 'भाग्य' शब्द (से आशय) कोई कर्म नहीं। इसकी पात्रता से **समझकर....** (यह) समझा। आहा...हा...हा...! अनादि का अप्रतिबुद्ध, अनादि का अत्यन्त अज्ञानी, अत्यन्त अज्ञानी (होने) पर भी, गुरु की कही हुई बात की खटक बारम्बार अन्दर अत्यन्त विचार श्रेणी में रखते हुए, 'अन्दर से ज्ञान आया' – समझ हुई। 'अरे...! मैं तो आनन्द हूँ, मैं तो ज्ञान हूँ; मेरी चीज में कोई दूसरी चीज है नहीं।' आहा...हा...! यह सम्यग्दर्शन की, अर्थात् जीव की पहली समझने की रीति की यह प्रक्रिया है। आहा...हा...!

समस्त प्रकार से **सावधान होकर...** समझकर सावधान हुआ। आ...हा...हा...! 'मैं तो आनन्द हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ' – ऐसी खटक अन्दर रहा करती है। उसकी समझ का अनुभव हो गया। समझ में आया? 38 (वीं) गाथा में बहुत गम्भीरता भरी है। आहा...हा...! एक तो अनादि का मोह और अत्यन्त अप्रतिबुद्ध, इसको विरक्त गुरु ने निरन्तर समझाया; अतः निरन्तर समझ में और सुनने आयी, उस बात की निरन्तर खटक रहा ही करी, आहा...हा...! दूसरे कहीं भी प्रेम न करते हुए इसको आत्मा के प्रति प्रेम का झुकाव अन्दर हो गया। आहा...हा...हा...! बहुत सारभूत गाथा! जीव (अधिकार) की यह अन्तिम गाथा

है। आहा...!

'किसी प्रकार से' समझा – ऐसा कहकर, काललब्धि भी इसकी आ गयी है – ऐसा सब कहते हैं। क्रमबद्ध भी आ गयी है। 'किसी प्रकार' से का अर्थ यह सब है। इसकी काललब्धि भी आ गयी है, इसके क्रम में यह आने का काल भी है; अतः किसी प्रकार समझकर सावधान हुआ। जो अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था, वह अन्तर में आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप है, उसमें अत्यन्त सावधान हुआ। आ...हा...हा...! जीव को समझने की यह पहली कला और पहली पद्धति यह है। बाद में दूसरी बात – व्रत और चारित्र (ये) सब बाद में; पहले यह है।

(अब दृष्टान्त देते हैं) **सावधान होकर, जैसे कोई (पुरुष) मुट्ठी में रखे हुए सोने को भूल गया हो...** सुबह दाँतुन करते हुए, किसी के सोने के दाँत आदि होते हैं न? वह निकालकर और इस प्रकार हाथ में रखे हों और एक ओर हाथ में दाँतुन (होवे); एक ओर मुट्ठी में हाथ में सोना रखा हो और एक ओर दाँतुन करता हो (बाद में) भूल गया कि सोना कहाँ है? था मुट्ठी में, रखा हुआ मुट्ठी में; था नजदीक में और था इसके पास में। आहा...हा...! मुट्ठी में –ऐसी भाषा है न? कहीं अलमारी में रखा है कि ऐसा नहीं रखा है। नहीं तो यहाँ तो कितने ही दाँतुन करते हैं तो मकान के ऊपर होता है न, क्या कहते हैं? (मुमुक्षु) टोड़ा। टोड़ा.... टोड़ा तुम्हारा तो नाम भूल जाते हैं, वह टोड़ा में रखकर दाँतुन करते हैं। दाँतुन करते समय वह सोना होता है, उसको एक तरफ ऊपर कहीं रखे, यह यहाँ नहीं लिया। यहाँ तो मुट्ठी में रखा है। आ...हा...हा...! एक मुट्ठी में इस प्रकार सोना और एक हाथ से इस प्रकार दाँतुन करता है। आ...हा...!

मुट्ठी में रखे हुए सोने को भूल गया हो... मुफ्त का अपने यहाँ नहीं कहते? कि लड़का काँख में (हो) और भूल गया हो। लड़का काँख में हो और (ढूँढे कि) कहाँ गया? कहाँ गया? यही है, किन्तु यह रहा। ऐसी बात करता है कि नहीं? लड़का काँख में और भूल जाता है। ऐसे ही मुट्ठी में रखा हुआ सोना, स्वयं का रखा हुआ, स्वयं भूल गया। आहा...हा...! है? **मुट्ठी में रखा हुआ** है न? रखा किसने? स्वयं ने। आहा...हा...! शब्द में गम्भीरता है। सोना स्वयं ने मुट्ठी में रखा, वह भूल गया था। **वह फिर स्मरण करके...**

फिर स्मरण करके, आहा...हा...! अरे...! यह रहा। यह सोना यहाँ मेरे हाथ में है। याद करके वह सुवर्ण को देखे।

उस सुवर्ण को देखे – इस न्याय से... मुट्ठी में रखे हुए सुवर्ण को फिर से देखे इस न्याय से। यह न्याय! यह तो दृष्टान्त हुआ **अपने परमेश्वर...** आहा...हा...हा...! अपना परमेश्वर पूर्ण सामर्थ्य का धनी (है)। आ...हा...हा...! जिसको समझने के लिए पर की कोई अपेक्षा नहीं, पर की किसी मदद की जरूरत नहीं। आहा...हा...! ऐसा अपना परमेश्वर – परम सामर्थ्यवाला। कहा न? 'अपना परमेश्वर!' ऐसा कहा न? वीतराग सर्वज्ञदेव, ऐसा नहीं। 'अपना परमेश्वर! आहा...हा...! पूर्ण सामर्थ्य का धनी, पूर्ण बल का धनी, उसको भूल गया था। आहा...हा...!

....आत्मा को भूल गया था; उसे जानकर,.... भूल गया था, उसे जानकर... स्वयं भूला था और स्वयं ने जाना – ऐसा कहकर, यह कहते हैं कि कर्म ने भूलाया और गुरु ने समझाया; इसलिए समझ गया – ऐसा नहीं है। स्वयं, स्वयं से भूला था; स्वयं, स्वयं से समझ गया। आहा...हा...! ऐसे शब्द अन्दर पड़े हैं।

अपने परमेश्वर आत्मा को भूल गया था; उसे जानकर, उसका श्रद्धान करके.... पहले जानने की बात ली है। अन्दर जानने में आया, अरे...! यह चैतन्य ज्ञानमूर्ति, राग और विकल्प और बाहर की वस्तु से तो भिन्न है। जिसकी सत्ता में पूर्ण परमेश्वरता भरी है। जिसकी सत्ता में राग आदि (और) पामर जीव का (पामरता का) तो अभाव है। राग आदि अथवा पर अजीव–जीव, पर जीव–पर अजीव इन सबसे खाली है। आहा...हा...! ऐसे **आत्मा को भूल गया था; उसे जानकर...** उसे जानकर (ऐसा कहा है)। देव को, गुरु को जानकर – ऐसा नहीं कहा। उसी प्रकार शास्त्र को जानकर – ऐसा भी नहीं कहा। आ...हा...हा...!

मुमुक्षु : गुरुदेव! हमें तो आपकी वाणी मिलने के बाद यह परिवर्तन हुआ – ऐसा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सीधा जाने, तब निमित्त कहा जाए, वजुभाई! ऐसा है। वह

इससे (स्वयं से) जाने, तब वाणी को निमित्त कहा जाता है। निमित्त से जानने में आता है – ऐसा इसका स्वरूप नहीं है। क्यों? (क्योंकि) स्वयं सामर्थ्यवाला परमेश्वर कहा है न? पूर्ण सामर्थ्यवाला है, पूर्ण शक्तिवाला है। इसे पर की कोई अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा कहा न? **अपने परमेश्वर को...** परम ईश्वर! आ...हा...हा...! परम (अर्थात्) पूर्ण ताकत को धरनेवाला भगवान आत्मा, वह स्वयं अपने को भूल गया था, वह स्वयं अपने को जानता है। गुरु पर समझाने का निमित्त आया। समझाने में निमित्त कहा परन्तु (शिष्य) समझे, तब उनको निमित्त कहा जाता है। आहा...!

युँ तो भगवान की वाणी (तो) समवसरण में अनन्त बार सुनी है। महाविदेहक्षेत्र में अनन्त बार जन्मा है। अनादि काल से अनन्त भव किये। अढ़ाई द्वीप में एक कण बाकी नहीं कि जिसमें अनन्त बार जन्म न हुआ हो। अरे...! अढ़ाई द्वीप के बाहर असंख्य द्वीप–समुद्र में भी एक कण बाकी नहीं, जहाँ कि अनन्त बार तिर्यंचरूप जन्म लेकर मरा न हो। अढ़ाई द्वीप में मनुष्यरूप से..., अढ़ाई द्वीप और सभी क्षेत्र में अनन्त बार जन्मा और मरा है। महाविदेहक्षेत्र में भी, जहाँ तीर्थंकर का कभी भी विरह नहीं; साक्षात् परमात्मा विराजते हैं, उनकी हाजिरी में भी वहाँ गया परन्तु वहाँ ध्यान नहीं दिया। अपना ही ध्यान नहीं दिया। वह ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं – ऐसा कहकर सुना वही रखा। वहीं का वहीं रखा। आहा...हा...! अन्तर में उतारने के लिए जो साक्षात् (परिणमन) चाहिए, वह नहीं किया।

इसलिए कहते हैं कि अपने परमेश्वर को जानकर, आहा...हा...! अपना सामर्थ्यवाला भगवान (है)। वह तो बहुत बार कहा था, 'भगवान आत्मा' सभी को कहा है। सभी आत्माएँ अन्दर भगवानस्वरूप ही हैं परन्तु पर्याय में भूलकर पामर, नरक और निगोद में भटकता है। इस मिथ्यात्व के कारण / मिथ्यात्व ऐसी सूक्ष्म चीज है कि जिसके कारण साधु होकर नौवें ग्रैवेयक जाए, तथापि मिथ्यात्व टलता नहीं। अन्दर आत्मा की ज्ञानदशा बिना –

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,
पे निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो॥

आहा...हा...! इसका अर्थ यह हुआ कि पाँच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण (का)

व्यवहार, वह सब दुःख है, आस्रव है, दुःख है। ऐसा मुनिव्रत धारण (करने पर) भी आत्मज्ञान बिना सुख प्राप्त नहीं किया। उसका अर्थ यह कि यह सब दुःख है। आहा...हा...हा...! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! इस प्रकार ऐसे देश में ऐसी अन्तरंग की बातें! सुनना कठिन लगे। आहा...हा...! अनन्त बार शुभभाव की क्रिया करके, मुनि के पंच महाव्रत धारण करके, अनन्त बार नवमीं ग्रैवेयक के अनन्त पुद्गलपरावर्तन भव किए हैं। नौवीं ग्रैवेयक है। चौदह ब्रह्माण्ड पुरुष के आकार हैं, उसमें इसने ग्रीवा–गर्दन है, वहाँ पूर्व में अनन्त भव किये हैं। यह अनन्त बार नग्न मुनि हुआ, आत्मज्ञान बिना 28 मूलगुण पाले, आहा...हा...! ऐसी क्रियाकाण्ड से अनन्त भव किये। वहाँ से निकलकर मनुष्य हो, वहाँ से निकलकर तिर्यंच हो, वहाँ से निकलकर नरक में जाए। आहा...हा...हा...!

यहाँ यह कहते हैं, अपने परमेश्वर को जानकर... आहा...हा...! इसने आत्मज्ञान किया। दूसरा ज्ञान भले न हो। आहा...हा...! परन्तु यह आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु है, उसका इसने ज्ञान करके और **उसका श्रद्धान करके...** ज्ञान करके श्रद्धान (किया)। चीज क्या है? इसका ज्ञान अन्दर हुआ, तब श्रद्धा हुई कि यह आत्मा परमेश्वर है। भगवान परिपूर्णस्वरूप है। आ...हा...हा...! निवृत्त कब हो?

उसका श्रद्धान करके और उसका आचरण करके... देखो! कैसा लिया है? अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था, उसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त किया। एक साथ तीन को प्राप्त किया – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एकसाथ?

समाधान : एकसाथ! अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था। अन्दर आत्मा की ताकत है। एक क्षण में केवलज्ञान लेने की ताकत है। तो (यहाँ) कहते हैं कि, वह अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था, उसने भी ज्ञान प्राप्त करके, श्रद्धा करके, **उसका आचरण करके...** देखा? आचरण– आत्मा का आचरण। आत्मा में एकाग्रता की लीनता, यह आत्मा का आचरण (है)। पंच महाव्रत की क्रिया आदि वह आत्मा का आचरण नहीं। आहा...हा...! बारह व्रत, पंच महाव्रत, भगवान की भक्ति और पूजा, ये कोई आत्म–आचरण नहीं। आ...हा...हा...! यह सब बाहर में जो चलता है, ये सब धमाल–धमाल, वह कोई आत्म–आचरण नहीं;

(मात्र) शुभभाव है। अशुभ से बचने के लिए वह आता है। है... होता है... तथापि वह आत्म–आचरण नहीं। आत्म–आचरण तो पुण्य और पाप के भाव से भिन्न शुद्धस्वरूप परमात्मा स्वयं है, इस शुद्ध (स्वरूप में) लीनता, उसका नाम आत्म–आचरण है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : यह करना या नहीं करना?

समाधान : क्या करना? करना या नहीं करना (यह) नहीं, उसके काल में होना हो वह होता है, करता नहीं। सूक्ष्म बात है। यह सब बाहर का जो (होता) है, (वह) इसके क्रमबद्ध के काल में उन परमाणु की पर्याय उस प्रकार होने की होती है, (वह) वहाँ होती है। आत्मा उसका वास्तव में तो साक्षी और जाननेवाला है; कर्ता नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है। लाखों रुपये–करोड़ों रुपये खर्च करे, मन्दिर करोड़ों बनवाये, वह कोई आत्म–आचरण नहीं। आहा...हा...! अरे! पंच महाव्रत पालन करे, वह आत्म–आचरण नहीं; आहा...हा...! आत्म–आचरण तो अन्दर राग से रहित वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा (है), अन्दर उस वीतरागता का आचरण, राग बिना का वीतरागता का अन्दर आचरण (करे), उसको यहाँ आत्मा का आचरण कहा जाता है। आहा...हा...हा...!

यह 38 वीं गाथ तो ऐसी है! जीव (अधिकार) की यह अन्तिम गाथा है। जीव अप्रतिबुद्ध था, वह जीव पूरा समझ गया, उसका यह जोड़ है। आहा...हा...! (स्वयं) समझ सकता है, समझने की ताकत है, पूर्ण बलवान है। अप्रतिबुद्ध था, फिर भी पूर्ण बलवान है और गुरु ने जैसे ही समझाया, वैसे स्वयं अपने अन्दर उतर गया। आ...हा...हा...हा...! अन्तर भगवान चैतन्य की ज्योति! चैतन्य का समुद्र! आनन्द का सागर भरा है। आ...हा...हा...! क्षेत्र भले शरीरप्रमाण चौड़ा (हो), तथापि भाव अन्दर अनन्त है। भाव अनन्त है। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता... अनन्त प्रभुता! एक–एक गुण में अनन्त प्रभुता, ऐसे अनन्त गुण – ऐसा जो यह भगवान आत्मा! आ...हा...हा...! इसमें कहते हैं, आचरण में लिपट गया – वह निश्चय व्रत (है)। वह पंच महाव्रत आदि व्यवहार व्रत, वह तो विकल्प (है), पुण्यबन्ध का कारण (है)। यह निश्चय व्रत। स्वरूप में लीन हो गया। ज्ञान और दर्शन जो हुआ, उसमें लिपट गया और

एकाकार हो गया। आ...हा...हा... !

थोड़ा सूक्ष्म है, भगवान ! अनन्तकाल... उसमें यह परदेश ! अफ्रीका तो अनार्य देश जैसा देश ! उसमें यह बात ! समझना कठिन लगे, लेकिन अनादर नहीं करना। कठिन पड़े अर्थात् 'ऐसी (बात) हमारे नहीं होती, हमारे तो पहले अमुक होता है' – ऐसा नहीं करना। पहले यह ही हो। इस बिना जन्म–मरण का अन्त कभी भी आनेवाला नहीं। आहा...हा... ! चौरासी लाख के अवतार ! आहा...हा... ! 'एक रे दिवस ऐसा आयेगा, मानो जन्मा ही नहीं था?' आहा...हा... ! बड़ा मालिया और बड़े 5–5 करोड़ के मकान (छोड़कर) चद्दर तानकर सो रहा, चद्दर तानकर सो रहा... सगे-सम्बन्धी सब टकटक देख रहे हैं। अर...र...र... ! 20 वर्ष का जवान चला गया है। स्त्री दो वर्ष की परिणीता हो, वह टकटक देखे और सुबक-सुबककर रोवे... उससे क्या हो? ऐसी स्थिति अनन्त बार हुई है। एक बार नहीं, किन्तु प्रत्येक प्राणी को स्त्री के भी अनन्त अवतार हुए। पुरुष के भी अनन्त अवतार हुए। हीजड़ापने, हीजड़ा अर्थात् यह नपुंसक, नपुंसक (होते) हैं न? वैसे पुरुष जैसे दिखायी देते हैं (परन्तु) अन्दर नपुंसक ! आहा...हा... !

एक गृहस्थ की पुत्री (ने दूसरे) गृहस्थ के वहाँ शादी की। यह बात बनी हुई है, नाम नहीं बताते। वहाँ वह लड़का निकला नपुंसक–हीजड़ा। आहा...हा... ! कितने वर्ष का सम्बन्ध। 25–30 वर्ष का एक–दूसरे का सम्बन्ध, ऐसा विचारकर लड़के को कन्या दी। वह लड़का नपुंसक निकला, हीजड़ा ! आहा...हा... ! जिसकी इन्द्रिय थोड़ा भी काम नहीं करती। ऐसे अवतार भी धारण किये, प्रभु ! आहा...हा... ! ऐसे अनन्त अवतार किये हैं, परन्तु तेरा परमेश्वर पूर्ण सामर्थ्यवाला है। आहा...हा... ! उसको देख, उसकी श्रद्धा (कर), उसका आचरण कर ! आ...हा...हा...हा... ! यहाँ तो 38 वीं गाथा का साराँश यह लिया है। जीव को समझाया तो जीव समझकर आचरण को प्राप्त हुआ। आहा...हा... !

उसका श्रद्धान करके और उसका आचरण करके उसमें तन्मय होकर....
अतीन्द्रिय आनन्द(स्वरूप) भगवान ! उसमें तन्मय होकर, आ...हा...हा... ! धन्य अवतार ! जिसने अवतार सफल किया। जिसके जन्म–मरण का अन्त आया। यहाँ वह बात की है। आहा...हा... ! ऐसे जीव को लिया है। वह जीव पा गया – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! न

पाये ऐसी ताकत (नहीं)। इसमें पाये ऐसी ताकत भरी है।

मात्र इसकी 'नजरने आलसे से अे नयणे न नीरख्या हरि!' 'नयणने आलसे रे नीरख्या न नयणे हरि'। हरि–आत्मा। 'पंचाध्यायी' में 'हरि' का अर्थ किया है। पंचाध्यायी है न? पण्डितजी! उसमें 'हरि' का अर्थ किया है। हरि अर्थात् अज्ञान और राग–द्वेष को हरे, वह हरि। ऐसा भगवान वह हरि है। प्रत्येक आत्मा हरि है। आ...हा...हा...! 'पंचाध्यायी' में है। अज्ञान और राग–द्वेष को हरनेवाला और ज्ञान एवं वीतरागता प्रगट करनेवाला – ऐसा वह परमेश्वर ताकतवाला है। जिसको राग और पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। आ...हा...हा...! परजीव के साथ तो कोई सम्बन्ध नहीं।

यह कहा था न? आत्मा (में) जो पर्याय (अर्थात्) अवस्था है; द्रव्य–गुण तो त्रिकाल है – द्रव्य और गुण वह त्रिकाल है, परन्तु वर्तमान पर्याय–अवस्था है, उसमें स्त्री, कुटुम्ब–परिवार, लक्ष्मी, इज्जत है ही नहीं। वह तो उनमें है। यहाँ कहाँ थी? पर्याय में नहीं। इसकी पर्याय में (भी) नहीं। आहा...हा...! और उन्हें 'मेरा' मानकर मूर्ख चार गति में भटक रहा है। जो इसकी पर्याय में नहीं; इसके द्रव्य-गुण में तो नहीं–द्रव्य त्रिकाली, गुण त्रिकाली, उसमें तो नहीं, परन्तु इसकी वर्तमान दशा में, पैसा, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार नहीं है। बराबर है? भगवानजीभाई! लड़का–(बड़का) कोई नहीं पर्याय में? इसकी पर्याय में हो तो राग–द्वेष और अज्ञान (है)। मिथ्यात्व और राग–द्वेष – तीन इसकी पर्याय में है; बाकी दूसरी कोई चीज इसकी पर्याय में नहीं। आहा...हा...! ....भाई! ऐसा है, भगवान! आहा...हा...! प्रभु! इसका द्रव्य तो त्रिकाल है, गुण ध्रुव त्रिकाल है, वर्तमान अवस्था जो पर्याय है, (जो) बदलती है, उस पर्याय में तीन काल में, तीन लोक में स्त्री, कुटुम्ब–परिवार, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, इसकी पर्याय में नहीं। आहा...हा...! वह (उल्टा) मानता है – वह मिथ्यात्व और राग–द्वेष इसकी पर्याय में है। तो इसको मिथ्यात्व और राग–द्वेष दूर करना है।

पर का त्याग और ग्रहण, यह आत्मा में है ही नहीं। यह क्या कहा? आत्मा में अनन्त गुण हैं, उसमें एक ऐसा गुण है कि 'त्याग–उपादान शून्यत्व शक्ति।' पर का त्याग और पर का ग्रहण – इनसे भगवान शून्य है। अज्ञानी का आत्मा भी इससे शून्य है। आ...हा...हा...! कब विचार किया है इसने! जो परवस्तु है – स्त्री, कुटुम्ब–परिवार, इज्जत, पत्नी, लड़का, मकान, अलमारी, गहने, कोई चीज इसकी पर्याय में है ही नहीं। इसकी पर्याय में 'वह मेरे

हैं, मैं इनका हूँ' – ऐसा मिथ्यात्व और राग–द्वेषभाव है। आहा...हा...! उनको यहाँ टाला है – ऐसा कहते हैं। पर्याय में जो राग–द्वेष और मिथ्यात्व था, वह द्रव्यबुद्धि, ज्ञायक (स्वरूप की) बुद्धि करके इनको दूर किया है।

इसलिए, आ...हा...हा...! **जो सम्यक् प्रकार से एक आत्माराम हुआ....** आहा...हा...! 'सम्यक् प्रकार से' शब्द क्यों लिया है? कि ग्यारह अंग को जानने में वह बात इसको आयी थी, किन्तु अन्दर में नहीं गया था। आहा...हा...! समझ में आया? ग्यारह अंग का ज्ञान (अर्थात्) एक अंग में 18,000 पद, एक पद में 51 करोड़ से अधिक श्लोक, ऐसा–ऐसा आचारांग...! दुगने, ठाणांग दुगने। दुगने–दुगने (करते जाओ अर्थात्) 18000, 36,000, 72,000 ऐसे डबल। ऐसे ग्यारह अंग का जाननपना किया, तथापि 'सम्यक् प्रकार से' आत्मा को नहीं जाना। आ...हा...हा...! अतः यहाँ शब्द लिया है कि 'सम्यक् प्रकार से।' (अर्थात्) जैसा इसका स्वरूप है, उस प्रकार श्रद्धा–ज्ञान और आचरण किया। आ...हा...हा...!

सम्यक् अर्थात् जैसा सत्य है, जैसा वह सतस्वरूप प्रभु है, इस प्रकार ज्ञान, श्रद्धा और आचरण किया, तब उसने दर्शन–ज्ञान–चारित्र को प्राप्त किया; तब उसने आत्मा के आचरण को प्राप्त किया। आहा...हा...!

सम्यक् प्रकार से एक आत्माराम हुआ... 'एक' शब्द क्यों लिया? देखा? 'एक आत्माराम हुआ' (अर्थात्) गुण–गुणी का भेद भी अब नहीं रहा। आ...हा...हा...! परवस्तु तो नहीं, राग–द्वेष और मिथ्यात्व तो नहीं, परन्तु गुण–गुणी का भेद नहीं। 'एक आत्माराम!' आ...हा...हा...! बहुत सारभूत वस्तु आयी है। गाथा बहुत सारभूत है। एकरूप आत्मा, त्रिकाल आनन्द का नाथ द्रव्यस्वरूप प्रभु! वह द्रव्यरूप–एकरूप द्रव्यरूप हुआ। उसको यह आनन्द और (यह) आत्मा – ऐसा भेद भी लक्ष्य में रहा नहीं। आहा...हा...! तब वह मोक्षमार्ग को पाया, तब उसकी अल्प काल में मुक्ति होनेवाली है, संसार का परिभ्रमण मिटनेवाला है। आहा...हा...!

सम्यक् प्रकार से आत्माराम हुआ... आत्माराम हुआ। आहा...हा...! 'निजपद में रमें, उसे राम कहते हैं।' निजपद में रमे उसे 'राम' कहते हैं। उसे आत्माराम कहते हैं।

यों तो 'आत्माराम' नाम तो कई के होते हैं, वह आत्माराम नहीं। निज आत्मा में.... आहा...हा....! एक ही द्रव्य में रमणता (होने पर) एक आत्माराम हुआ, द्वेतपना नहीं रहा। आहा...हा...! आत्मा और ज्ञान – ऐसे दो प्रकार भी लक्ष्य में नहीं रहे। दृष्टि में अकेला आत्माराम (आया)! आहा...हा...! सूक्ष्म बात है प्रभु! परन्तु बात सत्य है। यह करने पर ही छुटकारा है; नहीं तो यह जन्म–मरण के (फेरे नहीं मिटेंगे), आहा...हा...!

अभी तो एक (प्रसंग बना)। 'सोनगढ़' में अस्पताल में एक डॉक्टर था। वह बैठा था, उसमें एक नागिन निकली, उसको मालूम नहीं कि यह नीचे नागिन (है) इसका पैर नागिन के ऊपर आया। इसको उसने डसा (और) वहीं का वहीं मर गया। नागिन को सुरक्षित रखा। नागिन के ऊपर पैर पड़ा, अन्धकार का समय (था)। डॉक्टर बहुत होशियार था। पैर पड़ा इसलिए (नागिन ने डसा और) तुरन्त... देह छूट गया। उस नागिन को लोगों ने (बचाया) उपचार किया। आर्य लोग हैं वास्तव में! इसलिए ऐसा हुआ कि भाई (पैर) आ गया परन्तु अब इसे मार डालना ये ठीक नहीं, अपने को शोभता नहीं, इसलिए पैर का दबाव हुआ था, (उसका उपचार करके) नागिन को बचा लिया। वह तो यह पर्याय उसकी उस काल में होने की थी, वह हुई है। आहा...हा...! समझ में आया? किसी ने उसे बचाया है या डॉक्टर नागिन के कारण मरा है – ऐसा नहीं। देह छूटने के समय का काल ही था। आहा...हा...! और उस नागिन के वहाँ बचने का समय ही था। सोनगढ़ के पास है न? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : जिथरी हॉस्पीटल? टी.बी. का हॉस्पीटल!

पूज्य गुरुदेवश्री : जिथरी, बड़ा हॉस्पीटल! टी.बी. का हॉस्पीटल है न।

मुमुक्षु : डॉक्टर भी मर जाता है, गुरुदेव?

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर मर गया। वह डॉक्टर कहता है, डॉक्टर लाओ। आहा...हा...! काटा और साथ ही वह मर गया और नागिन जीवित रही। डॉक्टर मर गया, तुरंत मर गया। नागिन का जहर (चढ़ गया) पैर आया न (इसलिए) डंक मारा पैर में। उड़ गया... समाप्त।

'भावनगर' का एक डॉक्टर, हेमन्तकुमार। पाटनी का रिश्तेदार। पाटनी था न पाटनी? प्रभाशंकर पाटनी, उसका रिश्तेदार। अस्पताल का बड़ा डॉक्टर! सर्जन! वह

किसी का ऑपरेशन कर रहा था। उसने एकदम कहा – 'मुझे कुछ हो रहा है' यह मुझे हो रहा है (ऐसा कहा और) वहाँ कुर्सी पर बैठा, डॉक्टर उड़ गया। आहा...हा...! डॉक्टर भी क्या करे? डॉक्टर किसे बचाये? अपने को बचा सकता नहीं। जिस समय देह छूटने का प्रभु! वह समय नक्की (निश्चित) है। उस समय देह छूट जाना है। बड़े हास्पीटल का सर्जन हो या महीने की लाख रुपये की वेतनवाला हो। बड़े–बड़े डॉक्टर हो, आहा...हा...! जिसके लाख–लाख रुपये का वेतन हो (उसकी भी) एक क्षण में देह छूटनेवाली है। आहा...हा...! समय आया, देह छूट जाए एकदम से। एक आत्माराम नित्य ध्रुव है, उसको पकड़। इसको पकड़ और इसका ज्ञान और इसकी श्रद्धा कर और इसका आचरण कर। महाव्रतों का आचरण कर, वह इसमें नहीं कहा। आहा...हा..! वह बीच में आ जाते हैं, परन्तु आचरण आत्मा का कर। आहा...हा...!

आत्मा तो स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, नपुंसक नहीं, तिर्यंच नहीं, मनुष्य नहीं, देव नहीं, नारकी नहीं, कीड़ा नहीं – ये सब जड़ के लक्षण हैं। भगवान आत्मा.... आ...हा...हा...! पूर्णानन्द के नाथ को अन्दर पहचानकर श्रद्धा की, आचरण किया (और) आत्माराम हुआ। जो रागराम था, आत्मा में हराम था, राग में कुशल था। दुनिया के समझदार कहलाते हैं न? दुनिया के समझदार... वह दुनिया के समझदार। दुनिया में गहरे जानेवाले हैं! गहरे भटकने जानेवाले हैं! आ...हा...हा..! वहाँ दुनिया की समझदारी थोड़ी भी काम आये ऐसा नहीं। आहा...हा...! कठिन काम है। जेठालालभाई! यह तो सत्य बात है, भाई! कान में पड़नी चाहिए। ऐसी बात है, बापा! उसे जाना है! आहा...हा...! आहा...हा...! ऐसी बात कहाँ है?

(यहाँ) कहते हैं कि यह **आत्माराम हुआ, वह मैं ऐसा अनुभव करता हूँ...** देखा? आत्माराम हुआ ऐसा (मैं) अनुभव करता हूँ। **मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि : मैं तो चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ...** मैं तो चैतन्य, ज्योतिरूप आत्मा हूँ! आहा...हा...! उसमें सभी गुण साथ में आ गये। चैतन्यमात्र ज्योति में अविनाभाव में अनन्त गुण साथ हैं, वे आ गये परन्तु चैतन्य की प्रधानता–असाधारण स्वभाव है; (इसलिए ऐसा कहा कि) मैं तो चैतन्यमात्र ज्योति हूँ। आहा...हा...! राग नहीं, विकल्प नहीं, अल्पज्ञता नहीं। अल्पज्ञता

नहीं, राग नहीं, राग का फल पुण्य नहीं, पुण्य का फल यह बाहर की धूल, वह मैं नहीं। आ...हा...हा...! मैं तो एक चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ **कि जो मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;...** आहा...हा...! कितनी बात रखी है! जो मेरे ही अनुभव से, 'मेरे ही अनुभव से'! आहा...हा...! किसी गुरु, देव और शास्त्र से नहीं। आहा...हा...! मेरे ही अनुभव से... आहा...हा...! मैं चैतन्य ज्योति हूँ, जो मेरे ही अनुभव से... है न? **मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;...** मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है! आहा...हा...! गाथा बहुत अलौकिक! **मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ कि जो मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है;...** आहा...हा...!

अब कहते हैं कि मैं कैसा भिन्न हूँ? किससे (भिन्न हूँ)? मैं तो चैतन्यमात्र ज्योति हूँ, लेकिन किससे भिन्न हूँ? – इसका ज्ञान कराते हैं। **चिन्मात्र आकार के कारण...** (अर्थात्) मैं तो ज्ञानमात्र आकारवाला चैतन्यस्वरूप (हूँ), इसके कारण **क्रमरूप तथा अक्रमरूप...** क्रमरूप अर्थात? गति क्रमरूप है; एक के बाद एक गति (आती है), वह क्रमरूप है और अक्रमरूप अर्थात? योग और लेश्या और ज्ञान अक्रम (अर्थात्) एक साथ है। अक्रम अर्थात् पर्याय अक्रम करे, वह बात यहाँ नहीं। पर्याय तो क्रमबद्ध ही है। यह अक्रम अर्थात? क्रम अर्थात् कि गति एक के बाद एक (आये) वह क्रमरूप (कहा जाता है) वह भी मैं नहीं और अक्रम अर्थात् योग, लेश्या, कषाय और ज्ञान एक साथ होते हैं, वह भी पर्याय (है) परन्तु इतना भी मैं नहीं।

यह क्रमबद्ध के सामने अक्रमबद्ध आया! वह क्रमबद्ध के सामने अक्रम नहीं। वह तो अक्रम (भी) क्रम से ही है। क्या कहा? एक के बाद एक गति है, वह क्रम से ही है, लेकिन क्रम से (गति होने) के काल में, योग, लेश्या, कषाय, राग आदि एक साथ है, है तो पर्याय में, है तो क्रमबद्ध में आनेवाले, लेकिन एक साथ है, इनको अक्रम कहते हैं। एक साथ हैं, इसलिए अक्रम कहते हैं और गति एक साथ नहीं तो उसको क्रम कहते हैं। समझ में आया? क्रम–अक्रम में ऐसा नहीं कि क्रमबद्ध है और अक्रमबद्ध भी है आत्मा, ऐसा नहीं। आहा...हा...! अक्रम अर्थात् एकसाथ योग, लेश्या, कषाय, एक साथ होती (है) इस कारण इनको अक्रम कहा जाता है और एक के बाद एक गति होती है, उसको क्रम कहा जाता है। वह क्रमरूप और अक्रमरूप, वह मैं नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

मैं समस्त क्रमरूप... मेरे भगवान आत्मा का चैतन्य आकार (होने के) कारण मैं समस्त क्रमरूप गति (आदि से भेदरूप नहीं होता) (क्रमरूप अर्थात्) एक के बाद एक गति होती है। वह–क्रोध के बाद मान, मान के बाद लोभ, वह सब क्रम कहलाता है। लेकिन एक साथ क्रोध, लेश्या और योग (होते हैं), वह अक्रम कहलाता है। इसमें कुछ समझ में आता है? क्रमवर्ती इसमें कुछ बदलता नहीं। क्रमबद्ध जो है, वह तो क्रमबद्ध ही है। यह अक्रम कहा है, वह भी क्रमबद्ध में है परन्तु एक साथ है; इसलिए अक्रम कहा है। योग है, लेश्या है, राग है, इन्द्रिय है, भावेन्द्रिय है, वह सब एक साथ है। एक साथ है, इसलिए अक्रम कहा। परन्तु है तो क्रमबद्ध में ही आया हुआ। आहा...हा...! समझ में आया इसमें? सब क्रमबद्ध कहलाता है, इसलिए यह अक्रम आया न? क्रमबद्ध! समय–समय में क्रमबद्ध होता है; उल्टा-सीधा नहीं होता – तो यह अक्रम आया न? परन्तु इस अक्रम की व्याख्या दूसरी है। एक साथ योग और लेश्या आदि हैं, इस कारण अक्रम कहा और गति एक के बाद एक (होती है) – मनुष्य गति (बाद में) देव, देवगति (बाद में) नारकी... वह गति एक समय में दो नहीं होती, इसलिए वह गति एक के बाद एक होती है, इसलिए उसे क्रम कहते हैं और योग और लेश्या एकसाथ होते हैं, उसे अक्रम कहते हैं। हैं तो दोनों क्रम–क्रमबद्ध उत्पन्न होते हैं। झवेरचन्दभाई! अक्रम आया? अक्रम में क्रमबद्ध मिथ्या पड़ जाएगा – ऐसा नहीं। इस अक्रम (का) ऐसा अर्थ नहीं। अक्रम का अर्थ – एक साथ ज्ञान की पर्याय, योग की पर्याय, राग की पर्याय एक साथ है, उसे अक्रम कहते हैं और गति एक साथ नहीं होती; नरक के समय मनुष्य नहीं, मनुष्य के समय देव नहीं, अतः 'क्रम' (कही जाती है)।

समस्त क्रमरूप तथा अक्रमरूप प्रवर्तमान.... है? **व्यावहारिक भावों से भेद नहीं होता...** आहा...हा...! ऐसे क्रमरूप और अक्रम(रूप) भावों से भेदरूप नहीं होता, मैं तो अभेद हूँ। भले एक साथ योग और लेश्या (हो) (और) गति (एक के बाद एक) हो (तो भी) मैं तो अभेद एकाकार हूँ। ऐसे भेद से मैं भेद(रूप) नहीं होता।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)